Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में सामाजिक चेतना

डॉ. बालेश्वर प्रसाद*

*ऐसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी) अतर्रा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अतर्रा, बाँदा (उ.प्र.) भारत

शोध सारांश – केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में सामाजिक चेतना अत्यंत विकसित है। केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में प्रकृति, मानवीय संवेदनाएं, और मार्क्सवादी–यथार्थवादी चेतना के दर्शन होते हैं। उनकी रचनाओं में जनजीवन, किसान और शोषित वर्ग के संघर्ष का सजीव चित्रण मिलता है।केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में बुंदेलखंड की प्रकृति, नदियां, खेत और पेड़–पौधे बहुत सुंदर ढंग से उभरे हैं।उनकी प्रकृति कोई अमूर्त कल्पना नहीं, बल्कि जीवन और श्रम से जुड़ी जीवंत शक्ति है।केन नदी, बसंती हवा और ग्रामीण परिवेश उनके प्रकृति–प्रेम के मुख्य आधार हैं।वे प्रगतिशील और मार्क्सवादी विचारधारा के कवि हैं, जिन्होंने समाज के शोषक और शोषित वर्ग को करीब से देखा है।उनकी कविताओं जैसे 'हथौड़े का गीत' में मजदूर और किसान की मेहनत, भूख और संघर्ष की सीधी बात होती है।वे आम आदमी के जीवन की धूल और पसीने को अपनी कला की ताकत बनाते हैं।मानवीय संवेदनाएं और प्रेम उनके काव्य में घरेलू जीवन, प्रेम और अपनेपन के भाव भी बहुत गहरे हैं जैसे 'हे मेरी तुम। वे नारी के समान अधिकारों और सम्मान के पक्षधर रहे हैं। इस प्रकार उक्त शोधपत्र की शोधात्मक विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में सामाजिक चेतना की चेतनाएँ विद्यमान हैं।

प्रस्तावना – केदारनाथ अग्रवाल समकालीन प्रगतिवादी काव्यधारा के अत्यन्त सशक्त और यथार्थवादी कवि हैं। छायावादी कविता में जो व्यक्तिवादी रुमानी चेतना के विरुद्ध सामाजवादी यथार्थ की चेतना लेकर आयी है। यह धारा युगबोध की अभिव्यक्ति है। युगाकांक्षा से जुडी होने के कारण यह नवीन धारा अधिक जीवन सम्पन्न है। इसने साहित्य के तथ्य, दृष्टिकोण, सौन्दर्यबोध और अभिव्यक्त को सामाजिक से जोडकर अधिक क्षमता सम्पन्न तथा व्यापक बनाया है। केदार नाथ अग्रवाल ने अपनी कविता को सामाजिक जीवन से जोडकर देखने का प्रयास किया है। 'युग की गंगा' से लेकर यफूल नही रंग बोलते हैं 'काव्य संग्रह तक आते–आते केदार के विचारों में दृढता आ गयी है। अपनी परिपक्वता का श्रेय वे अपने बौद्धिक विचारों को नही मानते है वरन् उसे मानते है जो उनके कवि मित्रों ने एवं साहित्य मनीषियों ने उन्हें प्रेरणा दी है।

समकालीन प्रगतिवादी रचनाकारों में जहाँ केदारनाथ, नागार्जुन को जनता से आया हुआ सचेतन, जागरुक, सवेंदनशील रचनाकार मानतें है, वहाँ वे स्वयं को साहित्य के माध्यम से आया हुआ अभिज्ञापित करतें है। जिसका श्रेय वे निराला जी, रामविलास शर्मा, पी0 सी0 गुप्ता, अमृतराय और त्रिलोचन को देते हैं। इन साहित्यकारों से प्रेरणा पाकर केदारनाथ अग्रवाल साहित्यिक जीवन में एक नये युग को लाने का प्रयास करतें है। समय के साथ–साथ जैसे–जैसे प्रौढ़ता आती जाती है भावों और विचारों के द्वार भी खुलते जाते हैं। अनुभव ही लेखक का परमेश्वर होता है। जो रचनाकार के स्वयं के अनुभवों से उत्पन्न नही होती वह साहित्य की कसौटी पर खरी नही उतरती। अपने काव्य की दृढता के सन्दर्भ में केदार जी ने स्वयं लिखा है। जो रचना रचनाकार के स्वयं के अनुभवों से उत्पन्न नही होती वह साहित्य की कसौटी पर खरी नही उतरती। अपने काव्य के दृढता के सन्दर्भ में केदार जी ने स्वयं लिखा है–

'जैसे–जैसे समय बीतता गया और विवेक में बढ़ता गया और गलत से सही की ओर चलता गया। यथार्थ और वास्तविकता को क्रमश: समझता गया। यह समझ और जीवन–दृष्टि, सघर्ष और द्वन्द्व से आयी। अपने इन्द्रियो से मैने बर्हिजगत का ज्ञान प्राप्त किया।'[1]

इस प्रकार केदार समाज को उत्थान देने वाले कलाकार है। सच्चा कलाकार वह होता है जो कला के द्वारा जीवन में एक नया रंग भर देता है। कलाकार व्यक्तिगत सुख–दुख से बहुत ऊपर उठ जाता है तभी वह सच्चा कलाकार बन पाता है। कला भी एक प्रकार की सामाजिक चेतना है, जिसके माध्यम से मनुष्य का मानस सामाजिक वास्तविकता को प्रतिबिम्बित करता है। 'कला सामाज की एक आवश्यकता है। कला उस मोती के समान है जो समाज रूपी सीपी से उत्यपन्न होता है।'[2]

प्रगतिवादी काव्य जन–जीवन से जुड़ा हुआ काव्य है। केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवादी कवियों में प्रमुख स्थान रखते हैं। इन्होनें सामाजिक यथार्थताओं और वास्तविकताओं से परिचित कराकर अपनी जागरूक सामाजिक चेतना का व्यापक परिचित दिया है। केदार जी ने मजदूर और किसान के जीवन को निकट से देखा है और उनके बीच जीवन है। इसलिए उनकी कविताओं में सहज स्वभाविक भावुकता और सच्ची सहानुभूति के दर्शन होते हैं। इनकी रचनाओं में निराला जी की तरह का सामाजिक बोध दिखाई पड़ता है। इन्होनें अपनी प्रतिबद्धता किसानों, मजदूरों और शोषितों के प्रति प्रकट की है। केदार जब भी संमाजिक व्यवस्थता लाकर जनसामान्य के दुखों को दूर करना चाहतें है तथा शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति रख सकें–

'मिलों के मालिकों को
अर्थ के पैशाचिकों को
भूमि के हडपे हुये धरणीधरो को

मै प्रलय के साम्यवादी आक्रमण से मारता हूँ
और उनके अपहरण की
दिग्विजयी सभ्यता को
सर्वहारा की नवोदित सभ्यता से जीतता हूँ।'[3]

'युग की गंगा' कवि केदारनाथ अग्रवाल की सबसे महत्वपूर्ण प्रगतिवादी कृति है, जिसका व्यवस्थित प्रकाशन सर्वप्रथम हुआ यद्यपि यनींद के बादल' पहले लिखी गयी थी। इसमें सामाजवादी भावनाओं, विचारों, वर्ग संघर्ष तथा सामाजिक अन्तरविरोधों को अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है। भरतीय जनजीवन की हलचल, उनकी विवशता, दयनीय दशा, शोषण तथा उनमें व्याप्त अन्धविश्वास आदि का बडा विशद् वर्णन किया है। इन्होंने जनता में व्याप्त अन्धविश्वास तथा उसके पिछडेपन को अनदेखा नही किया है। सन् 1946 का जनउभार अपनी तर्क संगत परिणित पर नही पहुँचा इसका कारण वामपक्ष की कमजोरी के अलावा जनता का पिछडापन ही था–

'अधिकांश जनता का
रद्दी की टोकरी का जीवन है
संज्ञानहीन, अर्थहीन
बेकार चिरें–फटे टुकडों सा पडा है।'[4]

केदार जी का बालपन गांव में बीता तथा उसके कवि मानस पर इसकी छाप सदैव देखने को मिली है गांव के जनजीवन, विवशताओं, दुखों, अभावों, गरीबी तथा वहाँ की प्रकृति का सौन्दर्य व मिट्टी की सोंधी खुशबू उनकी कविताओं को अलग ही रूप प्रदान करती है। जमीदार किसानों का खून चूसने वाले जोंक हैं। वे तरह–तरह से उनका शोषण करतें है, बेगारी कराते हैं, कभी डिप्टी साहब के नाम पर कभी धर्म काज अथवा नाच–गानों के नाम पर किसानों को खूब दुहतें हैं। इसके अतिरिक्त जमीदारों के अमले सिपाही, पटवारी आदि भी किसानों को लूटने में कोई कोर कसर नहीं छोडते हैं। ययुग की गंगा काव्य संग्रह में मजदूर 'चन्दू चैतू' 'अंगर' आदि इस प्रकार की कविताएं है जिसमें ग्रामीण जीवन के वैषम्य के चित्रों को वास्तविकता की अनुभूति प्रदान की है, इस दृष्टि से 'मजदूर' कविता देखी जा सकती है–

'खातें है पेट की थैली में गाढ़ते
रोटी के टुकडों को दाँत से काटते
माँजतें है बर्तन,
नंगी ही धरती पर सोते हैं
काँखते–हाँफते
रोज की बदबू में सडते हैं दुनिया की।'[5]

कवि ग्रामीण जीवन का विशेष प्रेमी है उसके दुखों और विपदाओं को कवि ने देखा है, समझा है। इनके चित्रांकन में कवि की यथार्थवादी प्रवृत्ति झलकती है। 'चन्दू' कविता इसी प्रकार की है जिसमें कवि ने चन्दू जैसे अन्य अनेक ग्रामीण जनों के दीन–हीन जीवन को चित्रित किया है। 'दीन कुनवा' शीर्शक कविता में कवि ने ग्रामीण परिवार की दीन दु:खी अवस्थाओं को मार्मिक और ढंग से अभिव्यक्त किया है–

'दीन दु:खी यह कुनवा
जाडे की थर थर में कांपता
अपनी चौपारी में बैठा
ताप रहा है कांडा।'[6]

केदार जी का यह वर्ग जो श्रमजीवी है। मेहनत करके अन्य उगाता है तथा सब का पेट पालता है इसलिये केदार के लिये वे कमल जैसे सौन्दर्यपूर्ण है, लाल कमल जैसे जो सबेरा होते हुये काम पर लग जाते हैं। हाथ का काम में लगना कमल का खिलाना है–

'छोटे हाथ
सवेरा होते
लाल कमल में खिल उठते हैं
करनी करने को उत्सुक हों
धूप हवा में हिल उठते है।'[7]

किन्तु वास्तव में उनका जीवन बहुत हृदयद्रावक है। मार्मिक ग्राम्य जीवन का परिदृश्य उभारने में, उनकी छवि निखारने में, निराला के बाद के रचनाकारों में कविवर केदारनाथ अग्रवाल अग्रणी तथा महत्वपूर्ण हैं– 'गांव में' नामक कविता देखिये–

'सडे घूर की गोवर की बदबू से दबकर
महक जिन्दगी के गुलाब की मर जाती है।
रार, क्रोध, तकरार, द्वेष से दु:ख से कातर
आज ग्राम की दुर्बल धरती घबराई।'[8]

आज भी जब मानव चांद पर रहने के प्रयास कर रहा है तब ग्रामीण जीवन कितनी ही विकृतियों से भरा पड़ा ।इसी दुर्दशा को उन्ही के शब्दों में देखिये–

'जी रहा है मेरा गांव 'कमासिन'
टिमटिमाती हुई लालटेन की तरह।।'[9]

जहाँ ऐसा युगदृष्टा कवि रहता है, वहां की यह दशा है तब और गांवो की क्या स्थिति होगी? बांदा की धरती पर जन्में कवि केदारनाथ अग्रवाल को अपनी धरती के लोगों के प्रति कितना लगाव था यह उनकी कविताओं में भलि–भांति प्रकट हुआ है। उनकी लेखनी से वह पीडा उभरती जाती है जिसे वह चारों ओर महसूस करते हैं। इतनी कठिनाइयों और परेशानियों में रहते हुये भी किसान के जीवन में उल्लास भी है। वे अपनी मेहनत की कीमत पहचानते हैं–

'हमारे हाथ में हल है
हमारे हाथ में बल है
कि हम बंजर को तोडेंगे
बिना तोडे न छोडेंगे।'[10]

इतने अभावपूर्व जीवन व्यतीत करते हुये भी वह (किसान) अपने काम के साथ उल्लास के क्षण अवश्य निकाल ही लेता है– गीत चाहे कटाई का हो, जुताई, बुआई, अथवा निराई–गोडाई एवं ओसाई का हो–

'साइत आयी, साइत आयी, बहय गजब की बैरा
काटी मॉड़ी फसल पड़ी है, गांवों मारो सैरा
दौरी साधों अन्न ओसावों, अडर उडावों पैरा
ताल ठोकि के भारि भगावों, तेते ऐरा गैरा'[11]

पूंजीवाद सामाजिक व्यवस्था के अर्थवादी दृष्टिकोण ने 'अर्थ' को अनन्य अधिकारों का स्रोत बना दिया है। सामान्य जन जीवन इन अधिकारों से वंचित अपना पूर्ण विकास करने में सम्पूर्ण असमर्थ है। आज की स्वस्थ्य समाज की भावना मात्र कल्पना के रूप में दिखाई देती है। विभिन्न वर्णो के कठिन श्रम और संघर्ष के बाद भी देश के अधिकतर मनुष्य आशाविहीन पशुवत जीवन जीते हैं। जीवन के प्रति इस वर्ग का विश्वास अत्यन्त क्षीण होता जा रहा है। समाज के थोडे से लोग शिक्षा–संस्कार और सामाजिक उच्च मर्यादा का उपभोग कर रहे हैं। शोषक वर्ग जिसे हम उच्च वर्ग कहते हैं,

अपने अन्याय को अनेक सुन्दर वस्त्रों में ढककर समाज की आँख में धूल झोक रहा है। किन्तु यह वर्ग (सर्वहारा वर्ग) कितना ही दीन-हीन क्यों न हो कवि की दृष्टि में उसकी उपयोगिता समाज के लिये कम नही है। कवि केदार जी इन दोनों वर्गो का तुलनात्मक चित्र प्रस्तुत करते है-

'पूजीपति अपने बेटे को बेहद काला दिल देता है
वाली मसि से काली करनी, करने का अवसर देता है,
जब तक जीता है रहता है शोषण की शिक्षा देता है,
वह अपने को और जगत को, बेटे को धोखा देता है।'[12]

इसके प्रतिकूल मजदूर-

'श्रमजीवी अपने बेटे को पर उपकारी दिल देता है,
मेहनत करने को, जीने को, हाथों में हल लोहे का घन
हर आफत से लड़ जाने को, गति देता है बल देता है।'[13]

केदार जी का साहित्य ऐसे अनेक उदाहरणों से भरा पड़ा है जिसमें उन्होंने इस श्रमजीवी जनता की खुलकर प्रशंसा की है। 'श्रम' शीर्शक से इन पंक्तियों को देखिये-

'खो सकता है
तेरा मेरा रत्ती-रत्ती जोड़ा सोना
हो सकता है
पूर्ण असम्भव का भी पूरा सम्भव होना
किन्तु नही श्रम
किन्तु नही श्रम
तेरा मेरा, इन हाथों का खो सकता है
इनके द्वारा
कर्म असम्भव पूरा सम्भव हो सकता है।'[14]

केदार जी शोषित वर्ग को उस समुद्र की तरह मानते हैं जो अब वर्षो से चले आ रहे शोषण से खलबला गया है क्योंकि सदियों से अपने जीवन पर शोषण के अत्याचार का वह असहनीय दर्द रहा है जो उसके जीवन और उसके कर्म से जुड़ा हुआ है। केदार कहते हैं अब बहुत समय हो गया जीवन ने चोट पर चोट खायी है। चोट खाते-खाते सदियां बीत गयीं है पर कभी कुछ नहीं कहा मगर अब अपना मौन तोड़ना ही पडेगा और इसलिये श्रमिक अपने मौन को तोड़ सघर्ष के लिये अपने हक के लिये उठ खड़ा हो रहा है-

'समुद्र वह है/जिसका धैर्य छूट गया है
दिक्काल में रहे
समुद्र वह है जिसका मौन टूट गया है
चोट पर चोट सहे सहे।'[15]

निष्कर्ष- इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में सामाजिक बोध अत्यंत विकसित है। जिस समय केदार जी ने काव्य के क्षेत्र में प्रवेश किया था वह वर्ग संघर्ष का समय था। समाज शोषक व शोषित दो वर्गो में विभक्त हो गया था। शोषक वर्ग संख्या में तो कम है किन्तु उत्पादन के साधनों पर उसका अधिकार है तथा जो जन-सामान्य का शोषण करता है। शोषित वर्ग अत्यन्त दीन-हीन दशा में रहकर अपने जीवन का निर्वाह कर रहा है। एक ओर पूंजीवादी,अय्याशी व भोग में डूबा है वहीं दूसरी ओर श्रमिक, शोषित भर पेट रोटी तथा अन्य आवश्यक आवश्कताओं की पूर्ति करने में कठिनाइयों का सामना करता है। केदारनाथ अग्रवाल ने इस सामाजिक यथार्थ का भरपूर चित्रण किया है। इस प्रकार उक्त शोधपत्र की शोधात्मक विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में सामाजिक बोध की चेतनाएँ विद्यमान हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. फूल नही रंग बोलते है - केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-36, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्-1965
2. क्रिस्टोफर कॉडवेल इल्युशन एण्ड रियलिटि, पृ0स0-14
3. फूल नही रंग बोलते है - केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-78, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्-1965
4. गुलमेंहदी- केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-29, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्-1978
5. युग की गंगा- केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-36, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्-1947
6. युग की गंगा- केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-36, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्-1947
7. गुलमेंहदी- केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-135, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्-1978
8. गुलमेंहदी- केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-29, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्-1978
9. गुलमेंहदी- केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-29, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्-1978
10. गुलमेंहदी- केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-66, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्-1978
11. गुलमेंहदी- केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-66, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्-1978
12. लोक और आलोक- केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-55, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्-1947
13. लोक और आलोक- केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-56, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्-1947
14. लोक और आलोक- केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-58, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्-1947
15. फूल नही रंग बोलते है - केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-36, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्-1965

****